हुआ जिसके अनुसार प्रजा ने राजा को राज्य शासन चलाने के लिए, अन्न की उपज का छठवाँ भाग, व्यापार द्वारा प्राप्त धन का दसवाँ भाग और हरण्य की आय का कुछ भाग कर रूप में देने का निश्चय किया।[1] साथ ही साथ, यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि कर से प्राप्त धन का अधिकारी वही राजा होगा जो अपनी प्रजा को धन-धान्य से सुखी रखेगा तथा सभी व्याधियों एवं शत्रु आक्रमण से रक्षा करेगा।[2]

इस प्रकार यह समझौता द्विपक्षीय था, जिससे राजा और प्रजा अपने कर्तव्य से बँधे हुए थे। राजा प्रजा के प्रति तथा प्रजा राजा के कर्तव्य निभाने के लिए बाध्य थे। जो राजा प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य से विमुख होगा वह अपने अधिकार से वंचित कर दिया जायेगा। प्रजा उसकी धन-धान्य से सहायता करना बन्द कर देगी अर्थात् राजा को पद से पदच्युत कर देगी। उन्होंने कहा है प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है। प्रजा के हित में ही उसका हित है, राजा का अपना प्रिय या सुख कुछ नहीं है। प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है। राजा के कुछ निश्चित कर्तव्य हैं, इन्हें पूरा करने के बदले में ही वह प्रजा से निश्चित करों के रूप में अपनी वृत्ति या वेतन प्राप्त करता है। राजा को प्रजा पर, उसकी पूर्व अनुमति के बिना कर लगाने, तत्सम्बन्धी धन संचय करने तथा उसे खर्च करने का अधिकार नहीं है। कौटिल्य के यह विचार लोकतन्त्रीय हैं। कौटिल्य ने प्रजा के हाथ में वित्तीय अधिकार सौंप कर निश्चित ही राजा को निरंकुश बनने से रोक दिया।

सप्तांग सिद्धान्त अथवा राज्य के अंग
[ELEMENTS OF STATE OR SAPTANG SIDDHANT]

कौटिल्य ने राज्य के सात अंग बतायें हैं। इसलिए राज्य के इस सिद्धान्त को सप्तांग सिद्धान्त कहा जाता है। आधुनिक युग में राज्य की कल्पना चार तत्वों के सामूहिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन चारों में से कोई भी अंग यदि नहीं होता है तो वह राज्य नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार इन सात अंगों से विहीन राज्य भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहता है। वह जनता की आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य आक्रमण से रक्षा में असमर्थ रहता है। राज्य के सात अंग निम्न हैं :

(1) **स्वामी** (The King)—कौटिल्य ने स्वामी अर्थात् राजा में अनेक गुणों का होना आवश्यक बताया है। उसने राजा को एक आदर्श पुरुष माना है जिसमें हर प्रकार के गुण हों और अवगुण नहीं हों। स्वामी के गुणों की गणना करते हुए उसने बताया कि वह उच्च कुल में उत्पन्न, धर्म में रुचि रखने वाला, दूरदर्शी, सत्य बोलने वाला, महत्वाकांक्षी, अथक परिश्रमी, गुणियों की पहचान और आदर करने वाला, शिक्षा प्रेमी, योग्य मन्त्रियों से युक्त, सामन्तगणों को वश में रखने वाला होना चाहिए। उसकी योग्यता और विद्वत्ता उसे आत्मसम्पन्न बनाती है। उसमें सेवा करने की भावना, शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, प्रत्येक बात को समझने की शक्ति होनी चाहिए। उसकी स्मृति तीव्र गुणों से युक्त होनी चाहिए। उसे विधान तथा तर्कशक्ति से सम्पन्न होना चाहिए। उसमें शौर्य, अपराध क्षमा करने की शक्ति होनी चाहिए। वह शक्तिसम्पन्न, आत्मसंयमी, विविध प्रकार के अश्व एवं हस्ति, अस्त्र-शस्त्रों के संचालन में निपुण हो। शत्रु को विपत्ति में दबाने और अपनी विपत्ति में दृढ़ सैन्य संगठन करने वाला हो। शास्त्रानुसार अपकार-उपकार कर्ता के साथ व्यवहार करने की क्षमता, अकाल आदि सभी समयों में अन्न का ठीक

---

1 *अर्थशास्त्र,* 6-7/13/1.
2. *वही,* 9/13/1.

प्रबन्ध करने तथा विधियों के अनुसार राजकोष की वृद्धि करने वाला होना चाहिए। उसे सैन्य संचालन, सेना को युद्ध की शिक्षा, उसके उत्साहवर्द्धन, युद्ध आदि; सन्धि, विग्रह, शत्रु की कमजोरी को जानने की कुशलता, दूर की सोचने की शक्ति आदि होनी चाहिए। वह तेजस्वी, आत्मसंयमी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से दूर रहने वाला, मीठे वचन बोलने वाला परन्तु दूसरों की मीठी बातों में न आने वाला, दूसरों की हँसी उड़ाने वाला नहीं होना चाहिए। इन गुणों से युक्त स्वामी हँसमुख होता है और वृद्धों की आज्ञाओं का अनुसरण करता है तथा दूसरों की ओर भौंहें वक्र करके नहीं देखता है और उदार होता है। प्लेटो के अनुरूप कौटिल्य भी राजा की शिक्षा पर बल देता हुआ यह मानता है कि अशिक्षित राजकुल उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार घुन लगी हुई लकड़ी। शासक के गुणों को एक वाक्य में कहा जा सकता है कि वह सर्वगुण सम्पन्न अवगुणों से मुक्त, इन्द्रियों का दमन करने वाला होना चाहिए। डॉ. बी. सिन्हा के अनुसार कौटिल्यीय राज शास्त्रीय व्यवस्था में राजा को शासन की धुरी माना गया है जो उसे गति प्रदान करता है। (In Kautilya's scheme the king was the lever of administration and had necessarily to play a positive and directive role in the government.) वह अपने राजा को प्लेटो की भाँति केवल दार्शनिक ही नहीं देखना चाहता परन्तु उसे राजर्षि (The King of Philosophers) देखना चाहता है।

(2) **अमात्य**—राजा की दूसरी प्रकृति अमात्य होते हैं। राज्य संचालन के वास्तविक अंग होते हैं। अकेला राजा कितना भी गुण सम्पन्न क्यों न हो लेकिन जब तक उसके अमात्य गुणवान और योग्य नहीं होंगे, शासन सफल नहीं हो सकता। राजा को अमात्यों की नियुक्ति बहुत ही सोच-समझकर करनी चाहिए। वह अमात्य राज्य के कर्मचारी होते हैं, मन्त्री नहीं; इन्हीं अमात्यों में से उपयुक्त व्यक्तियों को राजा द्वारा मन्त्री बनाना चाहिए।

(3) **जनपद**—कौटिल्य ने जनपद प्रकृति में आधुनिक युग के राज्य के दो तत्वों का सम्मिश्रण कर दिया है। जनपद से उसका अभिप्राय किसी प्रदेश की भूमि और जनता से है। भारतीय अर्थ में जनपद का प्रारम्भिक अर्थ एक जाति के प्रदेश से लिया जाता था लेकिन जब राज्य का स्वरूप बड़े राष्ट्रीय राज्यों में परिवर्तित हो गया, उसमें अनेक जातियों के लोगों का होना आवश्यक हो गया। जनपद के गुणों के सम्बन्ध में भूमि तथा उसकी स्थिति आदि स्वरूप पर आचार्य के विचार यूनानी विचारकों—प्लेटो तथा अरस्तू से काफी मिलते हुए हैं। उनमें जो अन्तर पाया जाता है वह देश-काल एवं परिस्थितियों आदि के कारण ही है। जनपद में पहला गुण यह होना चाहिए कि उनकी सीमा पर तथा मध्य में दुर्ग होने चाहिए। उसकी भूमि इतनी उपजाऊ होनी चाहिए कि थोड़े से परिश्रम से ही अधिक अन्न उत्पन्न हो सके और वह अन्न देश के निवासियों एवं आने वाले विदेशियों की आवश्यकता को पूरा करने में समर्थ हो। जनपद की पर्वतमालाएँ, सरिता तथा वन ऐसे होने चाहिए जो संकट काल में सहायक हो सकें। कृषि धन के अतिरिक्त देश में खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में सुलभ हों। लकड़ी, हाथी तथा गायें (पशुधन) और उनके चारागाह आदि के लिए भूमि हो। जनपद के आसपास दुर्बल शासक हों, उनकी भूमि में कीचड़, कंकड़, पत्थर, उपजाऊ भूमि, हिंसक पशु, सघन वन, चोर आदि तथा छोटे-छोटे शत्रु न हों। जनपद का जलवायु स्वास्थ्यप्रद हो, सरिताएँ, झीलें, आदि उसे रमणीक बनाते हों, वहाँ क्रय-विक्रय सुलभ हो और बहुमूल्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता हो। प्रजा में दण्ड सहने तथा करों को सहन करने की सामर्थ्य हो। यहाँ किसान उद्यमी हों और राजा के शत्रुओं के विरोधियों की संख्या अधिक हो। प्रजा में अधिकांश नीच वर्ण के आज्ञापालक नागरिक हों। भूमि एवं जनता की विवेचना में अरस्तू का 'मध्यम सिद्धान्त' (Theory of Mean) विचार देता है।

भारतीय आचार्यों में ग्रन्थों आदि की शोध के साथ ही यह भी जानकारी प्राप्त करना शेष है कि अरस्तू ने आचार्य से या आचार्य ने अरस्तू से उपर्युक्त विषय में कुछ अनुदाय ग्रहण किया।

(4) **दुर्ग** (Fort)—कौटिल्य ने द्वितीय अधिकरण के तीसरे अध्याय में राज्य के प्रकृति तत्व दुर्ग पर विचार किया है। राजा को जनपद की रक्षा करने के लिए अपने सीमान्त प्रदेशों पर चारों ओर दुर्ग बनवाने चाहिए। यह दुर्ग युद्ध आदि के लिए उपयुक्त होने चाहिए और दुर्गम तथा बीहड़ प्रदेश में बनवाये जाने चाहिए। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्ग बताये हैं :

(अ) 'औषक' दुर्ग—इसके चारों ओर जल होता है और दुर्ग जल के बीच में टापू के समान होता है।

(ब) 'पार्वत' दुर्ग—यह पर्वत श्रेणियों, चट्टानों आदि से घिरा हुआ होता है। यह अँधेरी गुफाओं के रूप में होता है।

(स) 'धान्वन' दुर्ग—यह दुर्ग ठीक मरुस्थल में बना होता है। उसके आसपास जल, घास, वृक्ष आदि का नामोनिशान तक नहीं होता है।

(द) 'वन' दुर्ग—इस दुर्ग की विशेषता यह होती है कि उसके चारों ओर दलदल या काँटेदार झाड़ियाँ होती हैं।

इन दुर्गों में 'औदक' एवं 'पर्वत' संकटकाल में जनपद की रक्षा करने में सहायक होते हैं। 'धान्वन' और 'वन' वर्ग में जंगलों की रक्षा करने वाले अपनी रक्षा करते हैं और विपत्ति के समय राजा भी अपनी रक्षा करता है।

(5) **कोष** (Funds)—प्रजा के हित के लिए आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए, उसकी रक्षा के लिए सेना रखने के लिए तथा नगर आदि की व्यवस्था करने के लिए राज्य कोष की आवश्यकता होती है। राजा को एक उत्तम कोष पर ध्यान देना चाहिए। उसमें पहले शासकों एवं अपने धर्म से कमाये हुए मूल्यवान रत्न एवं सोना आदि होने चाहिए। प्रजा से कर के रूप में धन एवं धान्य एकत्रित करने चाहिए। प्रजा राजा को अन्न का छठवाँ, व्यापार का दसवाँ और पशुओं का पचासवाँ भाग तथा सोना राजा को दिया करेगी। यह कोष संकटकाल में तथा शान्तिकाल में राजा के काम आयेगा।

(6) **दण्ड** (Punishment)—राजा राज्य की रक्षा के लिए एक सुसंगठित शक्तिशाली सेना रखेगा। वह सेना पूर्वजों की सैन्य-परम्परा से चले आने वाले सैनिकों से बनेगी। परम्परा से चले आ रहे सैनिक कुल वीर और उत्साही होते हैं। इन्हें सैन्य अनुशासन एवं युद्ध की शिक्षा में पारंगत किया जायेगा। इनके परिवार, स्त्री और बच्चों की देखभाल राज्य द्वारा की जायेगी जिससे वे परिवार की दुरावस्था देखकर विचलित न हो जायें। रणक्षेत्र में गये हुए सैनिकों के परिवारों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व राजा का है। सैनिक आज्ञाकारी, सहनशील हों। उन्हें युद्धों का अनुभव हो और तरह-तरह के हथियार आदि चलाने आते हों, स्वामिभक्ति उनकी नसों में भरी हो, राजा के ऐश्वर्य और पतन दोनों में ही उसकी सेवा करने की भावना उनमें हो। वे क्षत्रिय कुलोत्पन्न हानि-लाभ की चिन्ता न करने वाले उत्साही वीर हों।

(7) **मित्र** (Friends)—कौटिल्य ने राज्य की प्रकृति का अन्तिम गुण मित्र बताये हैं। यह वंश परम्परा से चले आने वाले, राजा के हितैषी हों। यह राज्य की शान्तिकाल और संकटकाल दोनों में ही सहायता करते हैं, उनका स्वभाव स्थिर हो, राजा के सच्चे सहायक हों तथा हृदय से उसका साथ निभाते हों।

उपर्युक्त सप्तांग राज्य के गुण हैं। इन प्रकृतियों को 'राज सम्पत्' कहा जाता है। इनमें वर्तमान राज्य के चार तत्वों के अतिरिक्त तीन तत्वों का उल्लेख किया गया है। आधुनिक युग में राज्य के चार तत्व बताये जाते हैं। जनता, प्रदेश, सरकार एवं सम्प्रभुता। कौटिल्य ने इन चारों के अतिरिक्त दण्ड, कोष एवं मित्र और सम्मिलित कर दिये हैं। उनके विचारों में इनके अतिरिक्त इन तीनों का होना स्वाभाविक ही था क्योंकि उस समय राज्य के लिए सेना, कोष तथा मित्र आधुनिक चार बताये गये तत्वों से सम्बन्धित थे।

सप्तांग सिद्धान्त की आलोचना
[CRITICISM OF SAPTANG THEORY]

(1) **राज्य को शरीर बताना उचित नहीं है** (State is not an Organism)—सप्तांग सिद्धान्त में यह आभास पाया जाता है कि राज्य मानव शरीर की भाँति है और वह गुणों से पूर्णतः युक्त है। लेकिन हमें यह विस्मृत नहीं कर देना चाहिए कि आंगिक सिद्धान्त केवल आंशिक रूप में ही सत्य है।

(2) **कौटिल्य सार्वभौमिकता, सरकार, जनसंख्या तथा निश्चित भू-भाग जो राज्य के आधुनिक तत्व माने जाते हैं, उनका कहीं पर भी वर्णन नहीं करता है।** (He does not state any where in his Saptang theory elements of modern state.)

(3) **सप्तांग सिद्धान्त में प्रजातन्त्र की उपेक्षा की गयी है** (Democracy has been put to scorn in Saptang Theory)—इस आलोचना में बहुत कुछ शक्ति है। सप्तांग सिद्धान्त प्रजातन्त्र की अपेक्षा राजतन्त्र के अधिक समीप है।

(4) **राज्य सेना, कोष एवं दुर्ग की अनुपस्थिति में भी जीवित रह सकता है** (State can live in absence of military, funds and forts)—यह बात तो सत्य है कि ये बातें राज्य के लिए चाहे आवश्यक हों परन्तु उन्हें आधारभूत तत्वों की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। सेना प्रत्येक राज्य में पायी जाती है, उस पर बल दिया जाता है, परन्तु उसे राज्य का आधारभूत तत्व नहीं माना जा सकता।

राज्य का स्वरूप अथवा सप्तांग सिद्धान्त
[NATURE OF STATE OR SAPTANG THEORY]

कौटिल्य ने मनु, भीष्म आदि अन्य प्राचीन राजशास्त्रियों के मतानुसार राज्य के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए सप्तांग अथवा सात अंगों वाले राज्य की कल्पना की है। जिस प्रकार हमारा शरीर हाथ-पैर, मुँह आदि अनेक अंगों से मिलकर बनता है, उसी प्रकार राज्य भी एक जीवित जाग्रत शरीर (organism) है। राज्य के ये सात अंग हैं—स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। शुक्रनीति में इनकी मानव शरीर के अंगों से तुलना करते हुए कहा गया है—इस शरीर रूपी राज्य में राजा सिर के समान है, अमात्य आँख है, सुहृत् कान है, कोष मुख है, दण्ड मन है, दुर्ग हाथ हैं और राष्ट्र पैर हैं (1/61)। राज्य के विभिन्न अंगों को शरीर के अवयवों के समान मानने के कारण इस सिद्धान्त को राज्य का सावयव सिद्धान्त (Organic Theory of State) कहा जाता है। आधुनिक युग में राज्य की कल्पना चार अंगों के सामूहिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। इन चारों में से कोई भी अंग यदि नहीं होता है तो वह राज्य नहीं कहा जा सकता। ठीक उसी प्रकार इन सात अंगों से विहीन राज्य भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं हो सकता। राज्य के सात अंग अग्र हैं :